कैद में किताबें

हिन्दी ADDA

दिनेश कर्नाटक

कैद में किताबें

चौकीदार ने जब उसे प्रश्नकुल निगाहों के साथ कुछ खोजते हुए पाया तो पास आकर पूछने लगा - 'किसे ढूँढ़ रहे हो साहब? किस से मिलना है?'

'यहाँ जिला पुस्तकालय की शाखा है?' उसने सहमते हुए पूछा।

'हाँ, है ना साहब!' उसने तपाक से उत्तर दिया।

'रास्ता यहीं से है!' उसे आश्चर्य सा हुआ।

'जी हाँ, यहीं से जाते हैं वहाँ के स्टाफ वाले!'

'मगर लोग... पुस्तकालय जाने वाले लोग कहाँ से जाते हैं? यहाँ तो ताला है?' उसने अधीरता से पूछा।

'लोग... यहाँ तो साहब स्टाफ वाले आते हैं... स्कूल की छुट्टी के आधे घंटे बाद चले जाते हैं!' उसने उत्तर दिया।

'मेरा मतलब... लायब्रेरी में पढ़ने वाले!' उसने खीझते हुए दोहराया।

'अच्छा, कभी-कभार ही आता है, कोई साहब... बहुत दिनों में!' उसने सोचने की मुद्रा में कहा था।

'वे लोग अंदर कैसे जाते हैं?'

'कार्ड दिखाकर ही अंदर जाने की अनुमति है साहब!'

'पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने कोई नहीं आता?' उसने फिर आश्चर्य से पूछा।

'यहाँ तो स्कूल वाले आते हैं। आप को कहाँ जाना है?' उकताकर उसने पूछा।

'वहीं जाना है।' उसने कहा।

'कोई कागज वगैरा है साहब! मैडम ने बगैर परमिशन के किसी को अंदर भेजने से मना किया है?' उसने अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा।

नियुक्ति के कागज दिखाने पर उसने उससे कहा कि वह गेट से बाईं ओर को चला जाए।

यह एक पुराना सरकारी गर्ल्स इंटर कालेज था, जिसकी अँग्रेजों के दौर की ढहती हुई इमारत किसी प्राचीन धरोहर का सा एहसास करा रही थी। दरकती हुई दीवारों पर पेड़ उग आए थे। कमरों के ऊपर से छत नदारद थी। दीवारों पर जगह-जगह पैबंद की तरह जड़ा हुआ प्लास्टर उखड़ने लगा था। ऐसा लग रहा था जैसे इमारत को उसके हाल पर छोड़ दिया गया था। उन्हीं खंडहरों के बीच से जब उसे बच्चों के शोर की आवाजें सुनाई

दी तो वह सहमकर ठहर गया था। कुछ देर रुककर चारों ओर देखने के बाद वह आगे की ओर बढ़ चला। परिसर के आखिरी कोने में उसे एक उजाड़ सा कमरा दिखा, जिसके ऊपर उगी घास दूर से दिखाई दे रही थी। कमरे के सामने की ओर दरवाजे के ऊपर लटके हुए एक पुराने बोर्ड पर शाखा जिला पुस्तकालय जैसा कुछ लिखा था। जर्जर दरवाजे से होते हुए वह कमरे के अंदर दाखिल हुआ।

कमरा ऑलमारियों से अटा पड़ा था। बीच में एक मेज और कुछ कुर्सियाँ पड़ी थी। एक कोने पर पुस्तकालय प्रभारी की कुर्सी-मेज रखी हुई थी। कमरा छोटा था और बुरी तरह घिरा हुआ नजर आ रहा था। छत के बीचों-बीच का प्लास्टर उखड़ रहा था। कमरे में नमी और सीलन के कारण अजीब सी बदबू पसरी हुई थी। वहाँ एक कर्मचारी मौजूद था। दूसरा जो कि प्रभारी था अपने किसी काम से बाजार गया हुआ था। मौजूद कर्मचारी ने अपना परिचय देते हुए बताया कि वह चतुर्थ श्रेणी का कार्मिक है। उसकी नियुक्ति की खबर सुनकर वह काफी खुश हुआ। लेकिन बहुत जल्दी वह वहाँ की बदतर हालत का जिक्र करने लगा।

'आप तो देख ही रहे हो साहब... यहाँ का क्या हाल है? न कोई देखने वाला, न कोई पूछने वाला! हम लोग भी खाली बैठकर दिन काटते रहते हैं...!' उसने अपनी रामायण शुरू कर दी थी, जिससे निराशा तथा ऊब की महक आ रही थी।

उसकी बातों पर सिर हिलाते हुए वह इधर-उधर नजरें दौड़ाने लगा। उसने आगुंतक रजिस्टर देखा, जिसमें उस तारीख में कोई नहीं आया था। पीछे के पेज पलटे तो हर रोज मुश्किल से दो-तीन लोगों ने पुस्तकालय में प्रवेश किया था। वे भी उसी विद्यालय में पढ़ने वाली ग्यारवीं तथा बारवीं की लड़कियाँ थी।

बदबू के मारे वहाँ बैठना मुश्किल था।

'यहाँ कैसे बैठ लेते हो आप लोग...? कभी फर्नीचर वगैरा को धूप नहीं दिखाते?' उसने ताजी हवा लेने के लिए कमरे से बाहर जाते हुए कहा।

'जी हमें तो आदत हो गई है! क्या करें बिल्डिगों के कारण आस-पास धूप तक नहीं आती?'

'पास नहीं कुछ दूर पर तो आती होगी?'

'जी अब अकेला आदमी क्या-क्या करे! बाबूजी तो हाथ लगाते नहीं हैं।'

अब तक वह कुर्सी में बैठ चुका था। उसे भारी निराशा हुई थी। इस बीच इस कार्मिक ने प्रभारी को मोबाइल पर उसके आने की सूचना दे दी थी।

'आप लोग यहाँ समय कैसे बिता लेते हैं? बगैर पढ़ने वालों के पुस्तकालय का मतलब क्या है?'

'कोई आता ही नहीं है साहब!'

'आएगा तो तब ना जब किसी को यहाँ के बारे में पता होगा!'

'वही तो साहब! इसे लड़कियों के कालेज में छुपा दिया गया है। कोई आए भी तो कैसे... किसी को इसके बारे में पता ही नहीं है?' वह फिर से शुरू हो गया था।

'कितने साल हो गए यहाँ इस पुस्तकालय को?'

'जी, करीब पंद्रह साल!'

'पंद्रह साल से इस शहर के लोगों को यह तक पता नहीं है कि यहाँ एक पुस्तकालय है, जिसमें हर साल महत्वपूर्ण प्रकाशकों की नई पुस्तके आती हैं... तमाम पत्रिकाएँ आती हैं। लोग यहाँ के सदस्य बन सकते हैं! कितने सदस्य हैं...?'

'जी पैंतालिस!'

'पैंतालिस... पंद्रह साल में पैंतालिस सदस्य!'

'हाँ साहब जबकि आजीवन सदस्यता सिर्फ दो सौ रुपया है!'

अब वह खड़ा हो गया। उसने एक बार ध्यान से किताबों की ओर देखा। फिर उसकी नजर कोने पर पड़ी हुई गत्ते की पेटियों पर पड़ी।

'यह क्या है?'

'जी, नई किताबें हैं। इन्हें रखने के लिए ऑलमारी में जगह ही नहीं है!'

इस बार उसने ध्यान से ऑलमारी के भीतर रखी किताबों को देखा।

'यहाँ तो काफी अच्छी किताबें हैं!' उसके चेहरे पर मुस्कान उभर आई थी। 'मगर क्या फायदा इन्हें पढ़ने वाला कोई नहीं है! क्या कॉलेज की टीचर्स भी यहाँ नहीं आती?'

'मुश्किल से एक-दो एक आती हैं... वो भी अखबार पढ़ने! हमने कई मैडमों से मैंबर बनने को कहा... कोई तैयार ही नहीं हुआ!'

उसने जिस अनुराग से किताबों की ओर देखा था, उस से वर्षों से कैद किताबों में उम्मीद की लहर फैल चुकी थी। एक-दूसरे से सटे हुए... एक ही मुद्रा में खड़े-खड़े उन्हें वर्षों हो चुके थे। उनमें से कुछ को ही कभी किसी का मेहमान बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ऑलमारियों के भीतर के संकरे बैरकों में नमी के कारण उनसे सड़ाध छूटने लगी थी। कई तो खड़े-खड़े ही कंकाल में बदल चुकी थी। उनके दुश्मन नीचे की कतारों से उनके साथियों को नेस्तनाबूद करते हुए ऊपर की ओर बढ़ रहे थे। वे सब खतरे में थी। मगर उनके खतरे की किसी को खबर नहीं थी। वे सब उस आजीवन कारावास से मुक्त हो जाना चाहती थी। धूप-हवा में आकर एक बार फिर से खिल उठना चाहती थी। वे हर रोज वहाँ आने वाले अपने दोनों स्वराष्ट्रों की ओर इस उम्मीद के साथ देखती कि अपनी जेब से चाभी का छल्ला निकालकर वे उन्हें उस यंत्रणा से मुक्ति दे देंगे।

मगर वे रोज सुबह तय समय पर आते, अपना थैला एक कोने पर रखते और दिनभर अखबार तथा पत्रिकाओं के पन्ने पलटते जाते। आए दिन पुस्तकालय की उपेक्षा पर आला अधिकारियों को गालियाँ देते या शहर, देश, विदेश में घटी किसी घटना पर अपना गुस्सा प्रकट करते। फिर उनमें से कोई एक अपना काम निपटाने के लिए बाजार या घर की ओर को निकल जाता। एक के जाने के बाद दूसरा टूटी कुर्सी में कमर टिकाकर बैठ जाता। जेब से सिगरेट की डिब्बी निकालकर लंबे-लंबे कश खींचता। कई दिनों तक उनके इस तरह आने और चुपचाप चले जाने से जब वहाँ धूल जम जाती। मकड़ियाँ जगह-जगह अपना जाल फैलाकर शिकार फँसाने लगती। तब बाबूजी चतुर्थ श्रेणी कार्मिक से कहते - 'कुछ करो भाई, कभी कोई आ गया तो जवाब देना मुश्किल हो जाएगा!'

दोनों पर इस विशय पर पहले भी कहा-सुनी हो चुकी थी।

'देखो बाबूजी, मैं सफाई कर्मचारी नहीं हूँ, जो झाड़ू लगाऊँ! आप प्रधानाचार्य मैडम से कहकर वहाँ के सफाई कर्मचारी को बुलाकर सफाई करवा लो!' उस बार उसने दो टूक उत्तर दे दिया था।

हारकर वह प्रधानाचार्य की शरण में पहुँचा तो उन्होंने कहा, 'भई, वो यहाँ की सफाई कर दे यही बहुत है। कुछ कहो तो लड़ने को तैयार हो जाता है। इस उम्र में अब मैं किसी

विवाद में पड़ना नहीं चाहती। आप उससे कहकर काम करवा सकते हो तो करवा लो! मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी!'

बाबूजी ने मन ही मन सोचा कि जब आप अपने काम नहीं करवा पा रही हो तो मैं कौन से खेत की मूली हूँ जिसकी बात वह मान जाएगा।

वह वहाँ से खाली हाथ लौट ही रहा था कि वहाँ मौजूद उसके एक परिचित समकक्ष ने उसे परेशान देखकर कहा - 'अरे इसमें परेशान होने की क्या बात है? कक्षा छह-सात की क्लास में जाकर मैडम से कह देना वो भेज देंगी, तीन-चार लड़कियाँ...!'

'मगर स्कूल की बच्चियों से सफाई करवाना?' उसने आशंका प्रकट की थी।

'अरे यार, वो सूरज कुछ करता थोड़ा है। कभी देखे हैं यहाँ के बाथरूम... कक्षाएँ! सब बच्चियों के भरोसे चल रहा है। छोटे घरों की हैं... कौन पूछता है?' उसने उसकी आशंका दूर करते हुए कहा था।

तब से सफाई की यही व्यवस्था चल रही थी। उस बार जब सफाई को आई एक लड़की ने कार्मिक को टटोलने के अंदाज में पूछा - 'अंकलजी, क्या हम भी इन किताबों को पढ़ सकते हैं?'

वह एकदम बिगड़ उठा था - 'बड़ी आई इन किताबों को पढ़ने वाली। पहले अपने कोर्स की किताबें तो पढ़ ले!'

उसे परेशान होते हुए देखकर दूसरी लड़की ने उसे चिढ़ाना चाहा।

'अंकलजी, इन किताबों को ऑलमारी में बंद करके क्यों रखा गया है?'

वह अचकचा गया। फिर खुद को सँभालते हुए उसने उससे सवाल किया 'तुम को यहाँ किस काम के लिए बुलाया है? अभी बुलाऊँ तुम्हारी मैडम को?'

लड़की चुप। उसे कोई जवाब नहीं सूझा। वह झाड़ू लगाने लगी।

'कैसा समय आ गया? ये बच्चे अभी से कितनी मुँह जोरी करने लगे हैं। एक हमारा समय था। मजाल है जो बड़ों से कोई कुछ कह पाता। कितना डर होता था। अब सब खत्म हो गया। पहले की बात होती मैं भी अभी दिमाग ठिकाने लगा देता। मगर अब तो सुनते हैं कानून बन गया है। हम तो क्या टीचर लोग भी बच्चों को पीट नहीं सकते?' उसने मन ही मन सोचा था।

सफाई हो जाने के बाद दोनों खुश हो जाते। मानो उनके सर पर पड़ा बोझ उतर गया हो। उसी रौ में हर बार बाबूजी का मन करता बच्चियों को कुछ ईनाम दे दिया जाए। कुछ टाफी, लेमनचूस वगैरा...। फिर वह सोचता, कौन सा मेरा काम किया है। काम तो सफाई कर्मचारी का है। मैंने सफाई करवा दी। यही क्या कम है? पुरस्कार तो मुझे मिलना चाहिए। फिर उसे ख्याल आया, यहाँ कौन किस के बारे में सोचता है। सब को अपनी-अपनी पड़ी है और वह उदास हो गया।

वे जिनमें अभी भी साँस बाकी थी, वे किताबें चाहती थी कि जिस वजह से वे बनी थी और जिस के कारण उन्हें वहाँ लाया गया था, वह काम उनसे लिया जाता। मगर फिलहाल तो वे अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित थी। अपने मुर्दा पड़े साथियों और अपनी ओर बढ़ते हुए दीमकों को देखकर वे चिल्ला-चिल्लाकर बचाने की गुहार लगाती - 'देखो, वो हमारी ओर को आ रहे हैं! वो हमें नोच-नोच कर खा रहे हैं! हमें बचाओ... कोई तो हमें बचाओ!'

मगर उनकी आवाज आलमारियों की दीवारों से टकराकर उनके पास लौट आती थी।

उनका पिछला सरपरस्त भी अजीब था। अपने काम के अलावा न जाने किन कामों की चिंता में इधर-उधर भागा फिरता था। यह नया कमसकम कभी-कभी तो उनकी ओर उड़ती हुई सी नजर डाल लेता था। वह तो महीनों तक उनकी सुध नहीं लेता था। उसके राजकाज के दौरान इनके आधे साथी तबाह हो चुके थे। वो तो अच्छा हुआ कि उसका स्थानांतरण हो गया और प्रभार सौंपने के कारण हर ऑलमारी को खोलकर देखा गया। जब इस नए वाले ने उन्हें उठाकर देखना चाहा तो उसके हाथ में इनकी तहस-नहस लाशें आई थी। उनकी यह हालत देखकर उसे जोरदार का झटका लगा था। आवेष में आकर कह दिया, 'कम से कम एक-दो बार आलमारी को खोलकर देख लिया होता तो इतना नुकसान नहीं होता!'

पुराने वाले ने बगैर किसी झिझक के तुरंत जवाब दिया - 'मैंने कितनी बार साहब से पुस्तकालय को यहाँ से शिफ्ट करने को कहा था। हर बार देखते हैं... कुछ करते हैं कहकर मुझे टाल देते थे। तुम्ही बताओ जब जिम्मेदार लोगों को कोई चिंता नहीं तो हमारा-तुम्हारा जैसा छोटा कर्मचारी क्या कर सकता है?'

फिर एक बड़ा सफाई अभियान चलाकर उनमें से आधों को कूड़े के ढेर में फैंक दिया गया और बचे हुओं को नया नंबर देकर फिर से आलमारी में सजा दिया गया।

उन्हें लगा उनका यह नया सरपरश्त यूँ ही उनका ख्याल रखेगा, उन्हें लड़कियों के कोमल हाथों में सौंपेगा। उन्हें उनके बस्तों में झूलते हुए यात्रा का सुख मिलेगा। वे उनके साथ यात्रा करते हुए उनका होना सार्थक करती जाएँगी। मगर यह न हो सका। वे एक बार फिर से लंबी कैद में थी। उधर उनके दुश्मन तेजी से उन्हें रौंदते हुए उनकी ओर बढ़ रहे थे।

अब यह नया व्यक्ति आया था। जिसकी अभी-अभी नियुक्ति हुई थी।

'अरे वाह, यहाँ तो काफी अच्छी किताबें हैं!' उन्हें देखकर वह चहकता हुआ उनके काफी करीब आ गया और गौर से उनकी ओर देखने लगा।

'किताबें तो हैं मगर पढ़ने वाला कोई नहीं!' उसके उन पर कुछ ज्यादा ही रुचि दिखाने पर अभी-अभी बाजार से लौटे प्रभारी ने चिढ़ते हुए कहा।

'पढ़ने वाले भी हो जाएँगे!' मंत्रमुग्ध सा होकर उन्हें देखते हुए उसने कहा।

उसकी बात उसे नागवार गुजरी थी।

'आप कहना चाह रहे हैं, हमने कोई कोशिश नहीं की! पूछिएगा प्रधानाचार्य मैडम से... कई बार सदस्यता के लिए आदेश निकलवाया... क्या हुआ... उन्हें दो सौ रूपये भारी पड़ते हैं? फिर बड़ी बच्चियों को भिजवाने का अनुरोध किया। तब से कुछ चहल-पहल बनी रहने लगी। पहले तो ऐसा भी नहीं था।'

'ये क्या है?' उसने मेज के कोने पर पड़े हुए किताबों के ढेर की ओर इशारा करते हुए कहा और इससे पहले की वह कुछ कहता तपाक से एक किताब उठा ली। उसका हाथ धूल से सन गया।

'लौटाई हुई किताबें हैं। आज रखूँगा, कल रखूँगा सोचते हुए रखी रह गई।' जम्हाई लेते हुए उसने कहा।

उसने किताबें उठा ली और कपड़े से पोछ-पोछकर उन्हें मेज पर रखता गया - 'काम आज से ही शुरू!'

'जब मुझे यहाँ का चार्ज दिया गया, आधी किताबें खराब हो चुकी थी। मैंने लग करके सब को नए नंबर दिए... नए रजिस्टर बनाए! बहुत काम किया!' उसकी हरकत देखकर अपनी कर्मठता के बारे में बताना उसे जरूरी लग रहा था।

'लाइए चाभी दीजिए!' उसने सब किताबों को पोछकर उसके आगे हाथ फैलाया।

उसने बैग के अंदर टटोलकर चाभी उसकी ओर बढ़ा दी।

ऊपर के खानों में किताबों को रखने के बाद जैसे ही उसने नीचे के खाने की किताबों को सरकाया तो उसकी चीख निकल गई - 'अरे बाप रे! दीमकों की फौज?'

किताबों को मिट्टी में बदलते हुए दीमक ही दीमक नजर आ रहे थे।

'मैंने कितनी बार साहब से कहा था... दवा मँगवा दीजिए! यहाँ कौन किसकी सुनता है?' कहते हुए वह कुर्सी से उठा और एक फाइल खोलकर उसके पेज पलटने लगा।

'ये देखिए मैंने लिखित में अनुरोध किया था!' अपनी सफाई देते हुए वह बोला।

उसके घबराकर पीछे हटने के दौरान दीमक तेजी से नीचे की ओर को भागने लगे। लेकिन कुछ ही पलों में अपने चेहरे को रूमाल से बाँधकर वह तेजी से वहाँ मौजूद टॉट के एक चिथड़े से दीमकों को मसलने लगा। इसके बाद वह नीचे की कतार की सारी किताबों को बाहर खुले में ले आया। सभी किताबें मिट्टी के ढेर में बदल चुकी थी। वह अभी भी किताबों के बीच से निकलते हुए दीमकों को मारता जा रहा था और हर किताब को उलट-पलटकर देखता जा रहा था।

'छोड़िए सर, अब इनमें कुछ नहीं बचा!' पीछे से आ चुके प्रभारी ने उससे कहा।

'इस तरह तो एक दिन ये सारी किताबें खत्म हो जाएँगी!'

'हाँ, हो जाएँगी। यहाँ किसको चिंता है। देखा आपने मैंने दवाई के लिए लिखित में अनुरोध किया था। एक साल हो चुका है। किसी को फिक्र है। मुझ से कोई कुछ कहेगा मैं तो फाइल सामने रख दूँगा। मैंने अपना काम कर दिया था।' प्रभारी ने जोश भरी आवाज में कहा।

अचानक युवा पुस्तकालयाध्यक्ष के दिमाग में कोई बात आई और वह तेजी से कमरे में घुसा उसने दूसरी, तीसरी आलमारी के निचले खाने खोले और टॉट के चिथड़े से दीमकों को मारता गया। उसने सारी किताबों को मैदान में फैला दिया था। तब तक वहाँ आस-पास की शिक्षिकाएँ भी पहूँच चुकी थी। इस दौरान उसने सभी आलमारियों के ऊपर के खानों को भी देख लिया जिनमें रखी किताबें दीमकों से सुरक्षित थी मगर नमी से उनका बुरा हाल था।

'कल सारी किताबों को धूप में रखना होगा!' उसने दोनों से कहा।

'मैंने कितनी बार इससे कहा... थोड़ा समय लगाकर किताबों को धूप दिखवा दे। मगर यहाँ काम करना कौन चाहता है?' प्रभारी ने चुपके से कार्मिक की ओर इशारा करते हुए कहा।

'ऐसा लगता है, साहब को दीमकों से बड़ी नफरत है! आते ही सफाई अभियान में जुट गए!' वहाँ जुट चुके कालेज के कार्मिकों में से किसी ने चुटकी ली थी।

'आप लोगों को नहीं है क्या?' उसने पलटकर सवाल किया।

'अरे साहब, यहाँ तो जहाँ देखोगे वहाँ आपको दीमक ही दीमक नजर आएँगे। कहाँ-कहाँ सफाई करोगे?'

'फिलहाल तो किताबों की चिंता है। बाँकी बाद में देखा जाएगा!' उसने मुस्कराते हुए कहा और पानी की टंकी की ओर को चला गया।

'क्या यह सार्वजनिक पुस्तकालय है?' उससे मिलने आए उसके पत्रकार मित्र ने आश्चर्य से उससे पूछा था।

'हाँ, ये जनता के लिए है!' उसने सहजता से उत्तर दिया।

'अगर यह जनता के लिए है तो इसे यहाँ छिपाकर क्यों रखा गया है? माना जा सकता है शुरूआत में जगह की दिक्कत होगी। मगर इतने वर्षों में ये लोग इसके लिए कोई सार्वजनिक जगह भी नहीं खोज पाए? इसके लिए कौन जिम्मेदार है?'

'ये तो जनता को पूछना होगा?' उसने मुस्कराते हुए कहा।

अगले दिन बहुप्रचारित-बहुप्रसारित अखबार के तीसरे पेज में खबर थी - 'कोठरी में कैद ज्ञान, शहर अंजान!' यह बड़ी खबर कई हिस्सों में बंटी हुई थी। इसमें शहर के बुद्धिजीवियों की कड़ी प्रतिक्रियाएँ थी। जिलाधिकारी महोदय से बातचीत का ब्यौरा था जिसमें उन्होंने तत्काल जिला शिक्षा अधिकारी को पुस्तकालय को शहर के बीचों-बीच स्थापित करने के निर्देश दिए थे। जिला शिक्षा अधिकारी ने तुरंत जिलाधिकारी के आदेश का अनुपालन करने की बात कही थी।

यह खबर आगामी दो-तीन दिनों तक अखबार में चलती रही। स्थानीय नेताओं ने इस समस्या पर बढ़ी मुस्तैदी से अपने बयान दिए थे और सरकारी कार्यप्रणाली को जी

भरकर कोसा था। समाजसेवियों ने लोगों से आगे आकर पुस्तकालय के लिए मुहीम छेड़ने का आह्वान किया था। बहुत से नए लोग अब पुस्तकालय में आने लगे थे। ऑलमारियाँ खुलने तथा बंद होने लगी थी।

धीरे-धीरे लोगों का ध्यान उस खबर से हट गया और सरकारी मशीनरी अन्य जरूरी कामों में जुट गई।

एक साल बाद जब पत्रकार मित्र ने उससे इस सिलसिले में हुई प्रगति के बारे में जानना चाहा तो उसने बताया कि जो हुआ अखबारों में ही हुआ था। पत्रकार को झटका सा लगा था। उसने पिछली खबर का हवाला देते हुए एक बार फिर से प्रशासन को कठघरे में खड़ा कर दिया।

नए जिलाधिकारी तथा जिला शिक्षा अधिकारी ने इस संबंध में किसी भी प्रकार की जानकारी होने से अनभिज्ञता जाहिर की तथा तत्काल प्रकरण का पता लगाकर आवश्यक कार्यवाही करने का भरोसा दिया। जिलाधिकारी कार्यालय के एक बाबू को संबंधित फाइल की खोजबीन में लगा दिया गया। कई दिनों की खोजबीन के बाद उसे एक पत्र मिला जिसमें जिला शिक्षा अधिकारी को आवश्यक कार्यवाही के निर्देश दिए गए थे। उधर जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय के बाबुओं ने भी एक पत्र की कॉपी खोज निकाली थी, जिसमें खंड शिक्षा अधिकारी को जिलाधिकारी के आदेश के अनुपालन हेतु आवश्यक कार्यवाही करने का निर्देश दिया गया था। खंड शिक्षा अधिकारी ने बालिका इंटर कालेज की प्रधानाचार्य के नेतृत्व में एक कमेटी का गठन करके उपयुक्त स्थान का चयन कर उन्हें सूचित करने के निर्देश दिए थे। संबंधित प्रधानाचार्य ने कमेटी के सदस्यों को पत्र लिखकर एक निश्चित तिथि में उपस्थित होकर कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने के संदर्भ में सूचित किया था।

आखिरकार पत्रकार मित्र यह पता लगाने में सफल हो गया कि मामला कहाँ पर अटका हुआ है। असल में अपने कार्यों में व्यस्त कमेटी के सदस्य एक साथ बैठ नहीं पा रहे थे। मामला उठने के बाद वे एक साथ बैठे तथा उन्होंने रिपोर्ट दी कि शहर के मुख्य स्थानों में कोई ऐसी जगह या सरकारी भवन नहीं है, जिसमें जिला पुस्तकालय की शाखा खोली जा सके। हाँ, शहर से हटके राजमार्ग के किनारे नगर निगम के कुछ पार्क हैं, जिनमें पुस्तकालय भवन का निर्माण करना उचित रहेगा।

अखबार में खुशखबरी छपी थी। अब शहर वासी पार्क में न सिर्फ सेहत का ख्याल रख सकते हैं, बल्कि पढ़ भी सकते हैं।

लोक निर्माण विभाग के अभियंता को प्रस्ताव बनाकर भेजने के निर्देश दे दिए गए थे। प्रक्रिया एक बार फिर से चलने का आभास दे रही थी।

जबकि हर साल नई किताबें अपनी नई महक के साथ आती जा रही थी। लोगों के पढ़ने के लिए रखी गई कुर्सियों तथा मेजों को समेटकर किताबों के बक्स रख दिए गए थे। इस दौरान युवा पुस्तकालयाध्यक्ष को किसी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में नियुक्ति मिल चुकी थी। वह खुशी-खुशी वहाँ को चला गया था। बाबूजी रिटायर हो चुके थे। पुस्तकालय के अंदर अब बैठने की जगह नहीं रह गई थी। कार्मिक जो ड्यूटी का बड़ा पाबंद था, रोज समय से आता कुर्सी निकालकर पुस्तकालय के बाहर बैठ जाता और छुट्टी होने पर ताला लगाकर घर को चल देता।

शहर के लोग पार्क में खुलने वाले पुस्तकालय की बातें भूल चुके थे। वे तेजी से भाग रहे थे। उन्हें काम की जगह पहुँचने और वहाँ से घर लौटने की जल्दी थी। अब कुछ रूपयों से काम नहीं चल पा रहा था। उन्हें ढेर सारे रूपयों की जरूरत थी। वे नए मॉडल की कारों में घूमने, शहर में खुल रहे मॉल्स में डिस्काउंट पर खरीददारी करने, रेस्तराओं पर थाई-चायनीज खाना खाने, टीवी पर हँसने वाले सीरियल्स को देखकर उनकी फूहड़ता पर रोने तथा अपने बच्चों को इंजीनियरिंग, मैनजमेंट तथा मेडीकल में दाखिले को लेकर चिंतित थे। उनके बच्चे सुबह होते ही तरह-तरह की कोचिंग क्लासों की ओर दौड़ पड़ते थे। जहाँ से लौटकर वे मोटी-मोटी किताबों को रटने में लगे रहते थे। शहर में इनके अलावा आस-पास के गाँवों से आए हुए और भी बहुत से लोग थे जो सुबह से शाम तक दो जून की रोटी की जद्दोजहद में लगे रहते थे। वे हर ओर मौजूद थे। वे तेजी से भागते हुए शहर के लोगों के पीछे मजबूरी में दौड़ने को अभिशप्त थे। उनकी जिंदगी पर किताबें लिखी जा रही थी, जिन्हें सात समुंद्र पार के लोग बढ़े चाव से पढ़ रहे थे।

सच तो यह है कि इस आपाधापी में किताबों की किसी को जरूरत नहीं थी। अखबार लोगों की हर जरूरत को पूरा करता जा रहा था। अँग्रेजी में पढ़ना-लिखना-छपना प्रतिष्ठा की बात थी। लोग अपनी कार और बंगले की तरह अँग्रेजी की किताबों से लोगों को डरा रहे थे। इस भाषा में अपने देश के बारे में लिखकर कई लोग खूब नाम और दाम कमा रहे थे। स्थानीय भाषाओं में लिखना-पढ़ना लोगों के लिए आश्चर्य की बात बनता जा रहा था। यह जानते हुए भी कि लिखने से कुछ नहीं होगा। किताबों को कोई नहीं पढ़ेगा। लोग तेजी से लिख रहे थे और प्रकाशक पैसे लेकर उन्हें छाप रहे थे।

इसी दौरान जिला पुस्तकालय की शाखा में बचा हुआ एक मात्र कार्मिक भी सेवानिवृत्त हो गया। अधिकारियों के आदेश पर वह पुस्तकालय का चार्ज बालिका इंटर कालेज के बड़े बाबू को दे गया। सुनते हैं, अब पुस्तकालय में हमेशा ताला लगा रहता है। अखबार का पत्रकार अब टीवी का पत्रकार हो गया है। वह भी पुस्तकालय के बारे में भूल चुका है। इन दिनों वह भ्रष्टाचार को उजागर करने के अभियान में लगा है। लोगों का कहना है कि भ्रष्टाचार ही देश की सभी समस्याओं के मूल में है। अगर इसका समाधान हो गया तो देश को एक बार फिर से सोने की चिड़िया बनने से कोई नहीं रोक सकता। सुनने में तो यहाँ तक आ रहा है कि वह बहुत जल्दी भ्रष्टाचार पर अँग्रेजी में एक किताब लिखने जा रहा है। हो सकता है, जब किताब छप जाए तब उसे पुस्तकालय का ख्याल आए। फिलहाल तो दीमकें दावत उड़ाने में मस्त हैं और किताबें जिंदगी की भीख माँग रही हैं।